International Journal of Research
e-ISSN: 2348-6848 & p-ISSN 2348-795X Vol-5, Special Issue-9
International Seminar on Changing Trends in Historiography: A Global Perspective
Held on 2nd February 2018 organized by The Post Graduate Department of History. Dev Samaj College for Women, Ferozepur City, Punjab, India

भारतीय इतिहास में जाति व्यवस्था का विकास 1500 ई.पू. से 300 ई.पू. तक

अमित कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, देव समाज कालेज फॉर वीमेन, फिरोजपुर शहर, पंजाब

कुलदीप कौर

छात्रा, *MA*, इतिहास, (द्वितीय वर्ष) देव समाज कालेज फॉर वीमेन, फिरोजपुर शहर, पंजाब

शोध संक्षेप

जाति व वर्ण व्यवस्था प्राचीन भारतीय इतिहास में उद्भूत हुए. इसका सीधा सम्बन्ध व्यक्ति और समाज से है. यह जन्म मूलक नहीं है. प्रकृति किसी भी मनुष्य को जाति का तमगा लगा कर नहीं भेजती है. यह नितांत मानव का आविष्कार है. वर्ण व्यवस्था के रचनाकार कहते हैं कि इसकी स्थापना समाज के सही निर्माण के लिए की गयी थी. जिसका सबसे पहला प्रमाण हमें ऋग्वेद के काल में मिलता है.[1] जाति व्यवस्था का निर्माण हालांकि वर्ण व्यवस्था से ही हुआ लेकिन इसमें मौलिक भेद है. वर्णसंकरता जाति व्यवस्था के स्थापना का मूल कारण है. जाति व्यवस्था का विकास हम उत्तर वैदिक काल में पाते हैं.[2] गुप्त काल तक आते आते वर्ण व्यवस्था अपनी पूरी सुचिता खो बैठती है और समाज में अनेक ऐसी जातियां स्थान लेती हैं जिन्हें सामाजिक व्यवस्था से बाहर रखा जाता था. ऐसी जातियों को अन्त्यज कहा गया है. अलबरूनी भी इन्हें 'चंडाल' की संज्ञा देता है. इनके पास न ही नागरिक अधिकार थे और न ही क़ानूनी. इस शोध पत्र में मैंने जाति व्यवस्था के विकास को ३०० ई.पू. तक विश्लेषित करने का प्रयास किया है तथा साथ ही साथ समाज पर इसके प्रभावो का उल्लेख भी किया है. उंच-नीच, छुआ-छूत, भेद-भाव आदि सामाजिक कुरीतियाँ जाति व्यवस्था के ही परिणाम हैं.

मुख्य शब्द – वर्ण व्यवस्था, ऋग्वेद, ब्राह्मण, शुद्र

भूमिका

जाति शब्द संस्कृत के 'जिन' से आया है. डॉ. शिव स्वरूप सहाय के अनुसार जाति अंग्रेजी के पार्यायवाची शब्द 'कास्ट' का समानार्थी है जो पुर्तगाली भाषा 'कास्टा' से बना है. इसका अर्थ है नस्ल या प्रजाति.[3] इरफ़ान हबीब के अनुसार अंग्रेजी शब्द 'कास्ट' स्पेनिश व पुर्तगाली शब्द 'कास्टा' से आया है[4]. जबकि वर्ण का अर्थ है रंग. दोनों शब्दों का अर्थ समाज के पदानुक्रम से है. वर्ण का हालाँकि पहला उल्लेख ऋगवेद में है लेकिन दीगर बात यह है कि इसका अर्थ वह नहीं है जो बाद में लिया जाने लगा. ऋगवेद का वर्ण जन्म आधारित न होकर गुण आधारित है. जाति व्यवस्था भी कर्म आधारित है लेकिन कालांतर में वर्ण की ही भांति यह जन्म आधारित हो गयी.

[1] ऋग्वैदिक काल १५००-१००० ई.पू. का काल है.

[2] उत्तर वैदिक काल का समय ऋग्वैदिक काल के बाद शुरू होता है, इसका समय है १०००-६०० ई.पू.

[3] सहाय, डॉ शिव स्वरूप (२००४), *प्राचीन भारत का सामाजिक व आर्थिक इतिहास*, दिल्ली: मोतीलाल बनारसी दास, पेज 60

[4] हबीब, इरफ़ान और विजय कुमार ठाकुर (2016), *वैदिक काल*, नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पेज 73

International Journal of Research
e-ISSN: 2348-6848 & p-ISSN 2348-795X Vol-5, Special Issue-9
International Seminar on Changing Trends in Historiography: A Global Perspective
Held on 2nd February 2018 organized by The Post Graduate Department of History. Dev Samaj College for Women, Ferozepur City, Punjab, India

जाति व वर्ण

वर्ण व्यवस्था के बारे में हमे एक सामजिक प्रथा के तौर पर ऋगवेद में कोई उल्लेख नहीं है. ऋगवेद में वर्ण की दैवीय उत्पत्ति को आधार बनाया गया है और सृष्टिकर्ता के विभिन्न अंगों से विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति को माना गया है. उल्लेखनीय है कि वैदिक काल के पहले के भारतीय समाज में इस प्रकार का कोई वर्ण विभाजन नहीं पाया जाता. सिन्धु घाटी की सभ्यता में कोई भी सामाजिक विभाजन के प्रमाण नहीं मिले हैं. संभव है कि वहां सामाजिक स्तरीकरण रहा हो लेकिन चूँकि उसकी लिपि पढने में अभी सफलता नहीं मिली है इसलिए हमे उसका कोई स्पस्ट ज्ञान नहीं है.

भारत में वर्ण व जाति के प्रणेता व बीजक आर्य हैं. पंजाब में आकर बसने वाले आर्यों ने जो सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था बनाई वह आधार रूप में अभी भी चली आ रही है. भारत की मौलिक सामाजिक संरचना आर्यों की ही देंन है. आर्यों का पहला विभाजन रंग के आधार पर था, गोरे लोग आर्य कहे गये और काले लोगों को उन्होंने अनार्य घोषित कर दिया. कहीं कहीं तो उनके लिए दस्यु शब्द भी आता है. लगता है कि वैदिक काल में व्यवस्था जन्म पर आधारित नहीं थी. कर्म पर आधारित थी. लोग आवश्यकता अनुसार अपना वर्ण परिवर्तित कर सकते थे.[5] डॉ शिव स्वरूप सहाय ने अपनी एक पुस्तक में चारो वर्णों की उत्पत्ति के सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं. ऋग्वेद में एक विराट पुरुष की कल्पना की गयी है जिसके विभिन्न अंगों से विभिन्न वर्ण उत्पन्न हुए. मुख से ब्राह्मण और पैरों से शुद्र. हालाँकि इसमें पदानुक्रम को स्पस्ट नहीं किया गया है. रामायण भी कुछ इसी प्रकार का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है. महाभारत में भी वर्ण की उत्पत्ति ब्रह्मा के विभिन्न अंगों से बताई गयी है. गीता में कृष्ण कहते हैं कि मैंने गुण व कर्म के आधार पर विभिन्न वर्ण बनाए हैं.[6] वर्णों का धर्म भी अलग था, ब्राह्मण का धर्म शिक्षा देना, यज्ञ करना और ज्ञान में रत रहना था, क्षत्रिय रक्षा का दायित्व निभाते थे, वैश्य वाणिज्य व खेती करते थे और शुद्र इन तीनो वर्णों की सेवा करते थे. शुद्र इस पदानुक्रम में सबसे नीचे हैं. ऋगवैदिक काल में वर्णों के जिस स्वरूप की उत्पत्ति हुई वह कर्म केन्द्रित थी न की जन्म केन्द्रित. व्यक्ति अपने वर्ण को अपने कर्म के अनुसार बदल सकता था. उत्तर वैदिक काल तक पहुंचते-पहुँचते यह व्यवस्था जन्म आधारित हो गयी. ब्राह्मण के घर केवल ब्राह्मण पैदा हो सकता था भले ही उसका कर्म क्षत्रिय का हो. ब्राह्मण समाज में सबसे ऊँचे स्थान पर थे, उन्हें हर अधिकार व सुविधा प्रदान की गयी थी. ब्राह्मण को राज्य में पुरोहित कहा जाता था और वह राजा से भी शक्तिशाली माना जाता था.

उत्तर वैदिक काल तक आते आते शूद्रों की स्थिति में और भी गिरावट आयी और वैश्यों को भी शूद्रों के ही समकक्ष माना जाने लगा. अब वैश्य क्षत्रिय व ब्राह्मण का दास बन गया. अश्पृश्यता का प्रारम्भ भारतीय इतिहास में उत्तर वैदिक काल के बाद माना जाता है.

उत्तर वैदिक काल का समय सामाजिक-आर्थिक बदलाव का समय है. इसके बाद भारतीय इतिहास में महाजनपद काल आता है जिसे इतिहासकारों ने लौह युग की संज्ञा दी है. लोहे के आविष्कार ने समाज पर व्यापक प्रभाव डालना शुरू किया. समाज में अप्रत्याशित प्रगति देखी गयी. खेती में उत्पादन बहुत बढ़ गया. परिणाम स्वरूप व्यापार में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई. मगध एक केंद्रीय सत्ता के संस्थापक के तौर पर उदित हुआ और इसके अंत तक यह सत्ता लगभग सारे भारतीय उपमहाद्वीप पर फ़ैल गयी. सोलह महाजनपदों के रूप में राजनैतिक इकाईया इसी काल में राज्य के रूप में उभरती हैं. इनका अंतिम परिणाम वैश्य वर्ग के मजबूती के रूप में सामने आता है. वैश्य वर्ग समृद्ध होते गये. ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि वैश्य राज्य को ऋण भी दिया करते थे. वर्ण व्यवस्था की आधारभूत संरचना में परिवर्तन का काल है यह.

[5] नागोरी, डॉ. एस.एल. (1992), *प्राचीन भारतीय चिंतन का इतिहास*, जयपुर: नेशनल पब्लिशिंग हाउस. पेज 89

सहाय, डॉ शिव स्वरूप (२००४), *प्राचीन भारत का सामाजिक व आर्थिक इतिहास*, दिल्ली: मोतीलाल बनारसी दास, पेज 125

विषयों को प्रतिष्ठा दी बौद्ध व जैन धर्मो ने. बौद्ध व जैन धर्म मूल रूप में वर्ण व जाति के खिलाफ थे और व्यापारियों के प्रति व्यापक स्वीकार्यता रखते थे. विषयों ने इसी काल में खुले मन से इन दोनों श्रमण धर्मों को अपनाया और कालांतर में अनेक शासको ने भी ब्राह्मण धर्म के विकल्प के तौर पर श्रमण धर्म को प्रश्रय देना शुरू किया.

मौर्य युग के सन्दर्भ में मेगास्थनीज और कौटिल्य के विवरण हमे अनेक जातियों के विकास की सुचना देते हैं जिनमे ऐसे भी जाती शामिल थे जो किसी वर्ण विशेष में शामिल नहीं थे. उनकी जाति उनके व्यवसाय से निर्धारित थी. तंतुवाय, रजक, तुलवाय, सुवर्णकार, चर्मकार, कर्मार, लौह्काक आदि जातियां वस्तुतः शिल्पी जातियां थीं. इस काल तक हमे बौद्ध धर्म में भी छुआछूत के तत्व मिलने लगते हैं. बौद्ध विहारों में चांडालों व आदिवासी जनजातियों का प्रवेश निषेध था. एक स्थान पर बुद्ध स्वयं चांडालों से लिया गया भोजन अशुद्ध बताते हैं. इतिहासकारों में इस बात पर मतभेद है कि बौद्ध व जैन धर्मो ने जाति व्यवस्था के खिलाफ कोई संघर्ष किया हो. स्मृतिकार बौधायन ने लिखा है 'साधकों को निम्न जातियों व स्त्रियों की संगति से दूर रहना चाहिए'.

गुप्तकाल में ब्राहमणों की प्रतिष्ठा में अभूतपूर्व वृद्धि हुई. यह काल वर्णशंकर जातियों के उत्त्पत्ति के कारण जाना जाता है. अनुलोम व प्रतिलोम विवाहों का प्रभाव मिश्रित जातियों की उत्पत्ति के रूप में हुआ. दरअसल जाति प्रणाली की असल शुरुआत गुप्त काल में ही हुई और इस समय अनेक नवीन जातियों का उदय हुआ जिनमे से बहुत सी आज भी विद्यमान हैं.

निष्कर्ष

जाति व्यवस्था का दुष्परिणाम आज किसी परिचय या भूमिका का मोहताज नहीं है लेकिन इसके विकास की रूपरेखा यह लक्षित करती है कि यह व्यवस्था अनेक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक प्रक्रियाओं का प्रतिफल थी. जाति वस्तुतः वैदिक व्यवस्था नहीं है. वैदिक व्यवस्था में वर्ण कर्म प्रधान थे अतः वेदों पर जाति के उत्पत्ति की तोहमत नहीं लगाई जा सकती. सच्चाई तो यह है कि वर्ण व्यवस्था में दोष उत्पन्न हो जाने के कारण ही जाति ने आकार लेना शुरू किया. जाति वर्ण संकरता का परिणाम है. बौद्ध व जैन धर्मो ने स्पष्टतः जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष नहीं किया है जैसा की बाद में आंबेडकर ने सिद्ध करने की कोशिश की है.

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हबीब, इरफ़ान और विजय कुमार ठाकुर (2016), *वैदिक काल*, नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
2. झा, डी.एन. (2010), प्राचीन भारत: एक रूपरेखा, नयी दिल्ली: पीपुल्स पब्लिकेशन
3. नागोरी, डॉ. एस.एल. (1992), *प्राचीन भारतीय चिंतन का इतिहास*, जयपुर: नेशनल पब्लिशिंग हाउस
4. प्रसाद, ओमप्रकाश (2006), *प्राचीन भारत का सामाजिक व आर्थिक इतिहास,* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
5. सिंह, उपिन्दर, (2016), *प्राचीन व पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास.* पीयर्सन
6. सहाय, डॉ शिव स्वरूप (२००४), *प्राचीन भारत का सामाजिक व आर्थिक इतिहास*, दिल्ली: मोतीलाल बनारसी दास